दुलाईवाली – बंगमहलिा(1907)

काशी जी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके एक मनुष्य बड़ी व्यग्रता के साथ गोदौलिया की तरफ आ रहा था। एक हाथ में एक मैली-सी तौलिया में लपेटी हुई भीगी धोती और दूसरे में सुरती की गोलियों की कई डिबियाँ और सुँघनी की एक पुड़िया थी। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे, गोदौलिया की बायीं तरफ जो गली है, उसके भीतर एक और गली में थोड़ी दूर पर, एक टूटे-से पुराने मकान में वह जा घुसा। मकान के पहले खण्ड में बहुत अँधेरा था; पर उपर की जगह मनुष्य के वासोपयोगी थी। नवागत मनुष्य धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक कोठरी में उसने हाथ की चीजें रख दीं। और, 'सीता! सीता!' कहकर पुकारने लगा।

"क्या है?" कहती हुई एक दस बरस की बालिका आ खड़ी हुई, तब उस पुरुष ने कहा, "सीता! जरा अपनी बहन को बुला ला।"

"अच्छा", कहकर सीता गई और कुछ देर में एक नवीना स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसे देखते ही पुरुष ने कहा, "लो, हम लोगों को तो आज ही जाना होगा!"

इस बात को सुनकर स्त्री कुछ आश्चर्ययुक्त होकर और झुँझलाकर बोली, "आज ही जाना होगा! यह क्यों? भला आज कैसे जाना हो सकेगा? ऐसा ही था तो सवेरे भैया से कह देते। तुम तो जानते हो कि मुँह से कह दिया, बस छुट्टी हुई। लड़की कभी विदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत जाना नहीं हो सकता!"

"तुम आज कहती हो! हमें तो अभी जाना है। बात यह है कि आज ही नवलकिशोर कलकत्ते से आ रहे हैं। आगरे से अपनी नई बहू को भी साथ ला रहे हैं। सो उन्होंने हमें आज ही जाने के लिए इसरार किया है। हम सब लोग मुगलसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे। उनका तार मुझे घर से निकलते ही मिला। इसी से मैं झट नहा-धोकर लौट आया। बस अब करना ही क्या है! कपड़ा-वपड़ा जो कुछ हो बाँध-बूँधकर, घण्टे भर में खा-पीकर चली चलो। जब हम तुम्हें विदा कराने आए ही हैं तब कल के बदले आज ही सही।"

"हाँ, यह बात है! नवल जो चाहें करावें। क्या एक ही गाड़ी में न जाने से दोस्ती में बट्टा लग जाएगा? अब तो किसी तरह रुकोगे नहीं, जरूर ही उनके साथ जाओगे। पर मेरे तो नाकों दम आ जाएगी।"

"क्यों? किस बात से?"

"उनकी हँसी से और किससे! हँसी-ठट्ठा भी राह में अच्छी लगती है। उनकी हँसी मुझे नहीं भाती। एक रोज मैं चौक में बैठी पूड़ियाँ काढ़ रही थी, कि इतने में न-जाने कहाँ से आकर नवल चिल्लाने लगे, "ए बुआ! ए बुआ! देखो तुम्हारी बहू पूड़ियाँ खा रही है।" मैं तो मारे सरम के मर गई। हाँ, भाभी जी ने बात उड़ा दी सही। वे बोलीं, "खाने-पहनने के लिए तो आयी ही है।" पर मुझे उनकी हँसी बहुत बुरी लगी।"

"बस इसी से तुम उनके साथ नहीं जाना चाहतीं? अच्छा चलो, मैं नवल से कह दूँगा कि यह बेचारी कभी रोटी तक तो खाती ही नहीं, पूड़ी क्यों खाने लगी।"

इतना कहकर बंशीधर कोठरी के बाहर चले आये और बोले, "मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो-रुलाकर तैयार हो जाना।"

इतना सुनते ही जानकी देई की आँखें भर आयीं। और असाढ़-सावन की ऐसी झड़ी लग गयी।

बंशीधर इलाहाबाद के रहने वाले हैं। बनारस में ससुराल है। स्त्री को विदा कराने आये हैं। ससुराल में एक साले, साली और सास

के सिवा और कोई नहीं है। नवलकिशोर इनके दूर के नाते में ममेरे भाई हैं। पर दोनों में मित्रता का खयाल अधिक है। दोनों में गहरी मित्रता है, दोनों एक जान दो कालिब हैं।

उसी दिन बंशीधर का जाना स्थिर हो गया। सीता, बहन के संग जाने के लिए रोने लगी। माँ रोती-धोती लड़की की विदा की सामग्री इकट्ठी करने लगी। जानकी देई भी रोती ही रोती तैयार होने लगी। कोई चीज भूलने पर धीमी आवाज से माँ को याद भी दिलाती गयी। एक बजने पर स्टेशन जाने का समय आया। अब गाड़ी या इक्का लाने कौन जाय? ससुरालवालों की अवस्था अब आगे की सी नहीं कि दो-चार नौकर-चाकर हर समय बने रहें। सीता के बाप के न रहने से काम बिगड़ गया है। पैसेवाले के यहाँ नौकर-चाकरों के सिवा और भी दो-चार खुशामदी घेरे रहते हैं। छूछे को कौन पूछे? एक कहारिन है; सो भी इस समय कहीं गयी है। सालेराम की तबीयत अच्छी नहीं। वे हर घड़ी बिछौने से बातें करते हैं। तिस पर भी आप कहने लगे, "मैं ही धीरे-धीरे जाकर कोई सवारी ले आता हूँ, नजदीक तो है।"

बंशीधर बोले, "नहीं, नहीं, तुम क्यों तकलीफ करोगे? मैं ही जाता हूँ।" जाते-जाते बंशीधर विचारने लगे कि इक्के की सवारी तो भले घर की स्त्रियों के बैठने लायक नहीं होती, क्योंकि एक तो इतने ऊँचे पर चढ़ना पड़ता है; दूसरे पराये पुरुष के संग एक साथ बैठना

पड़ता है। मैं एक पालकी गाड़ी ही कर लूँ। उसमें सब तरह का आराम रहता है। पर जब गाड़ी वाले नेड`ढ़ रुपया किराया माँगा, तब बंशीधर ने कहा, "चलो इक्का ही सही। पहुँचने से काम। कुछ नवलकिशोर तो यहाँ से साथ हैं नहीं, इलाहाबाद में देखा जाएगा।"

बंशीधर इक्का ले आये, और जो कुछ असबाब था, इक्के पर रखकर आप भी बैठ गये। जानकी देई बड़ी विकलता से रोती हुई इक्के पर जा बैठी। पर इस अस्थिर संसार में स्थिरता कहाँ! यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इक्का जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया वैसे जानकी की रुलाई भी कम होती गयी। सिकरौल के स्टेशन के पास पहुँचते-पहुँचते जानकी अपनी आँखें अच्छी तरह पोंछ चुकी थी।

दोनों चुपचाप चले जा रहे थे कि, अचानक बंशीधर की नजर अपनी धोती पर पड़ी; और 'अरे एक बात तो हम भूल ही गये।' कहकर पछता से उठे। इक्के वाले के कान बचाकर जानकी जी ने पूछा, "क्या हुआ? क्या कोई जरूरी चीज भूल आये?"

"नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था; सो भूलकर विलायती ही पहिन आये। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न! वे बंगालियों से भी बढ़ गये हैं। देखेंगे तो दो-चार सुनाये बिना न रहेंगे। और, बात भी ठीक है। नाहक बिलायती चीजें मोल लेकर क्यों रुपये की

बरबादी की जाय। देशी लेने से भी दाम लगेगा सही; पर रहेगा तो देश ही में।"

जानकी जरा भौंहें टेढ़ी करके बोली, "ऊँह, धोती तो धोती, पहिनने से काम। क्या यह बुरी है?"

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आ घेरा। बंशीधर एक कुली करके चले। इतने में इक्केवाले ने कहा, "इधर से टिकट लेते जाइए। पुल के उस पार तो ड्योढ़े दरजे का टिकट मिलता है।"

बंशीधर फिरकर बोले, "अगर मैं ड्योढ़े दरजे का ही टिकट लूँ तो?"

इक्केवाला चुप हो रहा। "इक्के की सवारी देखकर इसने ऐसा कहा," यह कहते हुए बंशीधर आगे बढ़ गये। यथा-समय रेल पर बैठकर बंशीधर राजघाट पार करके मुगलसराय पहुँचे। वहाँ पुल लाँघकर दूसरे प्लेटफार्म पर जा बैठे। आप नवल से मिलने की खुशी में प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक टहलते रहे। देखते-देखते गाड़ी का धुआँ दिखलाई पड़ा। मुसाफिर अपनी-अपनी गठरी सँभालने लगे। रेल देवी भी अपनी चाल धीमी करती हुई गम्भीरता से आ खड़ी हुई। बंशीधर एक बार चलती गाड़ी ही में शुरू से आखिर तक देख गये, पर नवल का कहीं पता नहीं। बंशीधर फिर

सब गाड़ियों को दोहरा गये, तेहरा गये, भीतर घुस-घुसकर एक-एक डिब्बे को देखा किंतु नवल न मिले। अंत को आप खिजला उठे, और सोचने लगे कि मुझे तो वैसी चिट्ठी लिखी, और आप न आया। मुझे अच्छा उल्लू बनाया। अच्छा जाएँगे कहाँ? भेट होने पर समझ लूँगा। सबसे अधिक सोच तो इस बात का था कि जानकी सुनेगी तो ताने पर ताना मारेगी। पर अब सोचने का समय नहीं। रेल की बात ठहरी, बंशीधर झट गये और जानकी को लाकर जनानी गाड़ी में बिठाया। वह पूछने लगी, "नवल की बहू कहाँ है?" "वह नहीं आये, कोई अटकाव हो गया," कहकर आप बगल वाले कमरे में जा बैठे। टिकट तो ड्योढ़े का था; पर ड्योढ़े दरजे का कमरा कलकत्ते से आनेवाले मुसाफिरों से भरा था, इसलिए तीसरे दरजे में बैठना पड़ा। जिस गाड़ी में बंशीधर बैठे थे उसके सब कमरों में मिलाकर कल दस-बारह ही स्त्री-पुरुष थे। समय पर गाड़ी छूटी। नवल की बातें, और न-जाने क्या अगड़-बगड़ सोचते गाड़ी कई स्टेशन पार करके मिरजापुर पहुँची।"

मिरजापुर में पेटराम की शिकायत शुरू हुई। उसने सुझाया कि इलाहाबाद पहुँचने में अभी देरी है। चलने के झंझट में अच्छी तरह उसकी पूजा किये बिना ही बंशीधर ने बनारस छोड़ा था। इसलिए आप झट प्लेटफार्म पर उतरे, और पानी के बम्बे से हाथ-मुँह धोकर, एक खोंचेवाले से थोड़ी-सी ताजी पूड़ियाँ और मिठाई लेकर, निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया। पीछे से जानकी की

सुध आयी। सोचा कि पहले पूछ लें, तब कुछ मोल लेंगे, क्योंकि स्त्रियाँ नटखट होती हैं। वे रेल पर खाना पसंद नहीं करतीं। पूछने पर वही बात हुई। तब बंशीधर लौटकर अपने कमरे में आ बैठे। यदि वे चाहते तो इस समय ड्योढ़े में बैठ जाते; क्योंकि अब भीड़ कम हो गयी थी। पर उन्होंने कहा, थोड़ी देर के लिए कौन बखेड़ा करे।

बंशीधर अपने कमरे में बैठे तो दो-एक मुसाफिर अधिक देख पड़े। आगेवालों में से एक उतर भी गया था। जो लोग थे सब तीसरे दरजे के योग्य जान पड़ते थे; अधिक सभ्य कोई थे तो बंशीधर ही थे। उनके कमरे के पास वाले कमरे में एक भले घर की स्त्री बैठी थी। वह बेचारी सिर से पैर तक ओढ़े, सिर झुकाए एक हाथ लंबा घूँघट काढ़े, कपड़े की गठरी-सी बनी बैठी थी, बंशीधर ने सोचा इनके संग वाले भद्र पुरुष के आने पर उनके साथ बातचीत करके समय बितावेंगे। एक-दो करके तीसरी घण्टी बजी। तब वह स्त्री कुछ अकचकाकर, थोड़ा-सा मुँह खोल, जँगले के बाहर देखने लगी। ज्योंही गाड़ी छूटी, वह मानो काँप-सी उठी। रेल का देना-लेना तो हो ही गया था। अब उसको किसी की क्या परवा? वह अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी। प्लेटफार्म पर भीड़ भी न थी। केवल दो-चार आदमी रेल की अंतिम विदाई तक खड़े थे। जब तक स्टेशन दिखलाई दिया तब तक वह बेचारी बाहर ही देखती रही। फिर अस्पष्ट स्वर से रोने लगी। उस कमरे में तीन-चार प्रौढ़ा

ग्रामीण स्त्रियाँ भी थीं। एक, जो उसके पास ही थी, कहने लगी - "अरे इनकर मनई तो नाहीं आइलेन। हो देखहो, रोवल करथईन।"

दूसरी, "अरे दूसर गाड़ी में बैठा होंइहें।"

पहली, "दुर बौरही! ई जनानी गाड़ी थेड़े है।"

दूसरी, "तऊ हो भलू तो कहू।" कहकर दूसरी भद्र महिला से पूछने लगी, "कौन गाँव उतरबू बेटा! मीरजैपुरा चढ़ी हऊ न?" इसके जवाब में उसने जो कहा सो वह न सुन सकी।

तब पहली बोली, "हट हम पुँछिला न; हम कहा काहाँ ऊतरबू हो? आँय ईलाहाबास?"

दूसरी, "ईलाहाबास कौन गाँव हौ गोइयाँ?"

पहली, "अरे नाहीं जनँलू? पैयाग जी, जहाँ मनई मकर नाहाए जाला।"

दूसरी, "भला पैयाग जी काहे न जानीथ; ले कहैके नाहीं, तोहरे पंच के धरम से चार दाँई नहाय चुकी हँई। ऐसों हो सोमवारी, अउर गहन, दका, दका, लाग रहा तउन तोहरे काशी जी नाहाय गइ रहे।"

पहली, "आवे जाय के तो सब अऊते जाता बटले बाटेन। फुन यह साइत तो बिचारो विपत में न पड़ल बाटिली। हे हम पंचा हइ; राजघाट टिकस कटऊली; मौंगल के सरायैं उतरलीह; हो द पुन चढ़लीह।"

दूसरी, "ऐसे एक दाँई हम आवत रहे। एक मिली औरो मोरे संघे रही। दकौने टिसनीया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतँइहैं गड़िया खुली। अब भइया ऊगरा फाड़-फाड़ नरियाय, ए साहब, गड़िया खड़ी कर! ए साहेब, गड़िया तँनी खड़ी कर! भला गड़ियादहिनाती काहै के खड़ी होय?"

पहली, "उ मेहररुवा बड़ी उजबक रहल। भला केहू के चिल्लाये से रेलीऔ कहूँ खड़ी होला?"

इसकी इस बात पर कुल कमरे वाले हँस पड़े। अब जितने पुरुष-स्त्रियाँ थीं, एक से एक अनोखी बातें कहकर अपने-अपने तजरुबे

बयान करने लगीं। बीचबीच में उस अकेली अबला की स्थिति पर भी दु:ख प्रकट करती जाती थीं।

तीसरी स्त्री बोली, "टीक्कसिया पल्ले बाय क नाँही। हे सहेबवा सुनि तो कलकत्ते ताँई ले मसुलिया लेई। अरे-इहो तो नाँही कि दूर से आवत रहले न, फरागत के बदे उतर लेन।"

चौथी, "हम तो इनके संगे के आदमी के देखबो न किहो गोइयाँ।"

तीसरी, "हम देखे रहली हो, मजेक टोपी दिहले रहलेन को।"

इस तरह उनकी बेसिर-पैर की बातें सुनते-सुनते बंशीधर ऊब उठे। तब वे उन स्त्रियों से कहने लगे, "तुम तो नाहक उन्हें और भी डरा रही हो। जरूर इलाहाबाद तार गया होगा और दूसरी गाड़ी से वे भी वहाँ पहुँच जाएँगे। मैं भी इलाहाबाद ही जा रहा हूँ। मेरे संग भी स्त्रियाँ हैं। जो ऐसा ही है तो दूसरी गाड़ी के आने तक मैं स्टेशन ही पर ठहरा रहूँगा, तुम लोगों में से यदि कोई प्रयाग उतरे तो थोड़ी देर के लिए स्टेशन पर ठहर जाना। इनको अकेला छोड़ देना उचित नहीं। यदि पता मालूम हो जाएगा तो मैं इन्हें इनके ठहरने के स्थान पर भी पहुँचा दूँगा।"

बंशीधर की इन बातों से उन स्त्रियों की वाक्-धारा दूसरी ओर बह चली, "हाँ, यह बात तो आप भली कही।" "नाहीं भइया! हम पंचे काहिके केहुसे कुछ कही। अरे एक के एक करत न बाय तो दुनिया चलत कैसे बाय?" इत्यादि ज्ञानगाथा होने लगी। कोई-कोई तो उस बेचारी को सहारा मिलते देख खुश हुए और कोई-कोई नाराज भी हुए, क्यों, सो मैं नहीं बतला सकती। उस गाड़ी में जितने मनुष्य थे, सभी ने इस विषय में कुछ-न-कुछ कह डाला था। पिछले कमरे में केवल एक स्त्री जो फरासीसी छींट की दुलाई ओढ़े अकेली बैठी थी, कुछ नहीं बोली। कभी-कभी घूँघट के भीतर से एक आँख निकालकर बंशीधर की ओर वह ताक देती थी और, सामना हो जाने पर, फिर मुँह फेर लेती थी। बंशीधर सोचने लगे कि, "यह क्या बात है? देखने में तो यह भले घर की मालूम होती है, पर आचरण इसका अच्छा नहीं।"

गाड़ी इलाहाबाद के पास पहुँचने को हुई। बंशीधर उस स्त्री को धीरज दिलाकर आकाश-पाताल सोचने लगे। यदि तार में कोई खबर न आयी होगी तो दूसरी गाड़ी तक स्टेशन पर ही ठहरना पड़ेगा। और जो उससे भी कोई न आया तो क्या करूँगा? जो हो गाड़ी नैनी से छूट गयी। अब साथ की उन अशिक्षिता स्त्रियों ने फिर मुँह खोला, "क भइया, जो केहु बिना टिक्कस के आवत होय तो ओकर का सजाय होला? अरे ओंका ई नाहीं चाहत रहा कि मेहरारू के तो बैठा दिहलेन, अउर अपुआ तउन टिक्कस लेई के

चल दिहलेन!" किसी-किसी आदमी ने तो यहाँ तक दौड़ मारी की रात को बंशीधर इसके जेवर छीनकर रफूचक्कर हो जाएँगे। उस गाड़ी में एक लाठीवाला भी था, उसने खुल्लमखुल्ला कहा, "का बाबू जी! कुछ हमरो साझा!"

इसकी बात पर बंशीधर क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने इसे खूब धमकाया। उस समय तो वह चुप हो गया, पर यदि इलाहाबाद उतरता तो बंशीधर से बदला लिये बिना न रहता। बंशीधर इलाहाबाद में उतरे। एक बुढ़िया को भी वहीं उतरना था। उससे उन्होंने कहा कि, "उनको भी अपने संग उतार लो।" फिर उस बुढ़िया को उस स्त्री के पास बिठाकर आप जानकी को उतारने गये। जानकी से सब हाल कहने पर वह बोली, "अरे जाने भी दो; किस बखेड़े में पड़े हो।" पर बंशीधर ने न माना। जानकी को और उस भद्र महिला को एक ठिकाने बिठाकर आप स्टेशन मास्टर के पास गये। बंशीधर के जाते ही वह बुढ़िया, जिसे उन्होंने रखवाली के लिए रख छोड़ा था, किसी बहाने से भाग गयी। अब तो बंशीधर बड़े असमंजस में पड़े। टिकट के लिए बखेड़ा होगा। क्योंकि वह स्त्री बे-टिकट है। लौटकर आये तो किसी को न पाया। "अरे ये सब कहाँ गयीं?" यह कहकर चारों तरफ देखने लगे। कहीं पता नहीं। इस पर बंशीधर घबराये, "आज कैसी बुरी साइत में घर से निकले कि एक के बाद दूसरी आफत में फँसते चले आ रहे हैं।" इतने में अपने सामने उस ढुलाईवाली को आते देखा। "तू ही उन

स्त्रियों को कहीं ले गयी है," इतना कहना था कि ढुलाई से मुँह खोलकर नवलकिशोर खिलखिला उठे।

"अरे यह क्या? सब तुम्हारी ही करतूत है! अब मैं समझ गया। कैसा गजब तुमने किया है? ऐसी हँसी मुझे नहीं अच्छी लगती। मालूम होता कि वह तुम्हारी ही बहू थी। अच्छा तो वे गयीं कहाँ?"

"वे लोग तो पालकी गाड़ी में बैठी हैं। तुम भी चलो।"

"नहीं मैं सब हाल सुन लूँगा तब चलूँगा। हाँ, यह तो कहे, तुम मिरजापुर में कहाँ से आ निकले?"

"मिरजापुर नहीं, मैं तो कलकत्ते से, बल्कि मुगलसराय से, तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ। तुम जब मुगलसराय में मेरे लिए चक्कर लगाते थे तब मैं ड्योढ़े दर्जे में ऊपरवाले बेंच पर लेटे तुम्हारा तमाशा देख रहा था। फिर मिरजापुर में जब तुम पेट के धंधे में लगे थे, मैं तुम्हारे पास से निकल गया पर तुमने न देखा, मैं तुम्हारी गाड़ी में जा बैठा। सोचा कि तुम्हारे आने पर प्रकट होऊँगा। फिर थोड़ा और देख लें, करते-करते यहाँ तक नौबत पहुँची। अच्छा अब चलो, जो हुआा उसे माफ करो।"

यह सुन बंशीधर प्रसन्न हो गये। दोनों मित्रों में बड़े प्रेम से बातचीत होने लगी। बंशीधर बोले, "मेरे ऊपर जो कुछ बीती सो बीती, पर वह बेचारी, जो तुम्हारे-से गुनवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी, बहुत तंग हुई, उसे तो तुमने नाहक रूलाया। बहुत ही डर गयी थी।"

"नहीं जी! डर किस बात का था? हम-तुम, दोनों गाड़ी में न थे?"

"हाँ पर, यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तिला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न?"

"अरे तो क्या, मैं मर थोड़े ही गया था! चार हाथ की दुलाई की बिसात ही कितनी?"

इसी तरह बातचीत करते-करते दोनों गाड़ी के पास आये। देखा तो दोनों मित्र-बधुओं में खूब हँसी हो रही है। जानकी कह रही थी - "अरे तुम क्या जानो, इन लोगों की हँसी ऐसी ही होती है। हँसी में किसी के प्राण भी निकल जाएँ तो भी इन्हें दया न आवे।"

खैर, दोनों मित्र अपनी-अपनी घरवाली को लेकर राजी-खुशी घर पहुँचे और मुझे भी उनकी यह राम-कहानी लिखने से छुट्टी मिली।